संसदीय लोकतन्त्र और धूमिल की कविता

डॉ. संतोष कुमार 'निराला'

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद जीवन के हर क्षेत्र में नयी आशाओं एवं आकांक्षाओं ने जन्म लिया। इन आशाओं–आकांक्षाओं को आर्थिक–सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्वाधीनता के अभाव में सही दिशाओं में फलने–फूलने का अवसर नहीं मिल सका। नेहरू–युग की दिशाहीन राजनीति ने मूल्यों के विघटन की प्रक्रिया को तीव्र किया। धीरे–धीरे जनता की उमंगों पर अवसाद और खिन्नता का अंधेरा गहराने लगा। इस अवसादपूर्ण स्थिति का सीधा प्रभाव सर्जनात्मकता में अभिव्यक्त होता हुआ दिखाई दिया। आस्थावादी जीवन मूल्यों के स्थान पर अनास्थावादी मूल्य–चेतना का कुहराम उठ खड़ा हुआ। परिस्थितियों की बदरंग छायाएँ व्यक्ति की आस्था, विश्वास और उत्साह की जड़ें खोखली करती रही। तभी तो 'बीस साल बाद' शीर्षक कविता में धूमिल कहते हैं –

बीस साल बाद

मैं अपने–आपसे एक सवाल करता हूँ,

जानवर बनने के लिए कितने सब्र की जरूरत होती है?

कवि शक्ति के माध्यम से व्यवस्था परिवर्तित करना चाहता है। धूमिल को इस बात की पीड़ा है कि जनता को भेड़ बना दिया गया है जो दूसरों की ठण्ड के लिए अपनी पीठ पर ऊन की फसल ढो रही है। वर्तमान सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था को कवि अस्वस्थता से ग्रसित देखता है। व्यक्ति को यह व्यवस्था किस प्रकार तोड़ रही है, किस प्रकार उसका व्यक्तित्व चूर–चूर होता जा रहा है इसकी तीव्र अनुभूति कवि को होती है और वह तनावग्रस्त हो क्रुद्ध हो जाता है। कवि यह बात भी अच्छी तरह जानता है कि हम हर क्षण अस्वस्थता से ग्रसित व्यवस्था की मजबूत जकड़ में गिरफ्त हैं।